लोरजा

लोरजा

मृणाल

——जो इन गीतों का अर्थ है;
और जो इन छन्दों में निहित संगीत है—
उसी अपनी नि... को

'जं'—

सें० जे० लाहौर,
१९३७

परिचय—

कहा गया कि इस गीति-पुस्तिका के प्रस्तुत होते समय क्या मैं कुछ शब्द लिख सकता हूँ ? ज़रूर लिख सकता हूँ, और मुझे इसकी ख़ुशी है। यह नहीं कि कविता मैं जानता हूँ पर इस पुस्तक के रचयिता को जानने का मौक़ा मुझे मिला है।

चौधरी शेरजंग अब भी जेल में हैं। सन्' ३२ में जेल में ही उनसे मिलना हुआ। जैसा नाम वैसे वह पराक्रमी भी हैं। देख कर भारत के शौर्य युग की याद आती है। पर देह जितनी स्वस्थ और बलिष्ठ है, मन में कोमलता भी उतनी है। वह यदि योद्धा हैं, तो भीतर उनके मृदु-भावना का कवि भी है।

वह अंग्रेज़ी में कविता करते हैं, उर्दू में भी कविता करते हैं, और उनकी अंग्रेज़ी-उर्दू की रचनाओं का रसास्वादन सन्' ३२ में ही पा सका। तब वह भली भांति हिन्दी जानते थे, यह भी मैं नहीं कह सकता। आज सन् ' ३७ में इन कविताओं को देख-कर मुझे बहुत आश्चर्य और बहुत प्रसन्नता है।

कविताओं को तो ख़ुद पाठक देखेंगे ही। मुझे उस बारे में कहना क्या है ? पद-लालित्य और स्वर-माधुर्य्य उनमें मुझ अनाड़ी को भी दीख गया है। काव्य से अधिक उसे गीति-काव्य कहिए। अर्थ-गरिमा प्रमुख नहीं, भावना की तरलता और

मंजुलता इन गीतों में प्रगट होकर सामने आई है। मधुर पदों की लड़ियां आपको इतनी मिलेंगी कि शायद मांग से ज्यादा। और उनके लिए, मैं नहीं जानता, कि पाठक क्यों और भी उनका कृतज्ञ नहीं हो सकता।

जीवन की तत्पर समीक्षा इन कविताओं का विषय नहीं है। इनमें तो व्यथा का गान है। वह व्यथा भक्त की नहीं है, दार्शनिक की नहीं है, पर वह खरी सहृदयता की तो है। यदि वह किसी तरह के उच्छ्वास से भीगी है तो इसमें अनुचित क्या है?

भाई शेरजंग का हिन्दी कविता के क्षेत्र में मैं सहर्ष स्वागत सत्कार करता हूँ।

७ दरियागंज
दिल्ली।

जैनेन्द्रकुमार
२६।६।३७

निर्माल्य

यह पगली बेसुध उर-पीर।
प्रखर निदाघ-दिनान्त-गगन में-
कोकिल 'कूहू'-सी गम्भीर।
यह मेरी बेसुध उर-पीर।

ऊषा के शुचि-मुक्ता-पाण्डुर-
सौम्य-ज्योति-सम सुन्दर, सुमधुर;
दग्ध-दुपहरी-कातर-कुमरी
की 'कू-कू'-सम दाह भरी सी;
सिक्त, अचेतन, वाक्यहीन तम-
में तारक-सम विकल, अधीर;
यह पगली बेसुध उर-पीर।

तमसाच्छन्न-अरण्यशेष की
निःश्वासों-सम आवारा-सी;-
सरिता पर नत वन्य-पुष्प की-
स्थिर, कम्पित, सुरभित छाया-सी;
स्तब्ध, निरभ्र निलाम्बर-दृग में
खोई स्मृति-सम गहन गभीर;
यह मेरी बेसुध उर-पीर।

रूपसि! आज लिए मैं इसको
आया हूँ तव द्वार विकल हो,
लज्जा से हूँ नत-मस्तक पर;
निपट अकिञ्चन अंजलि लेकर
कैसे तव चरणों में आऊँ?
जहां विभा, सौरभ की भीर!
यह पगली बेसुध उर-पीर।

पर मेरा सर्वस्व यही है
मेरा सब कुछ 'पीड़ा' ही है;
यही लिए बैठा हूं प्रियवर,
रक्तराग में इसे छिपा कर।
प्राणदीप में जला रहा हूं—
आशा मिश्रित लोचन-नीर।
यह मेरी बेसुध उर-पीर।

मैं भिक्षुक हूँ, मम जीवन धन-
एक मात्र निर्माल्य अकिञ्चन;-
वह भी भेंट नहीं कर सकता,
लज्जित करती है निर्धनता;
सलिल बहाता हूं नयनों से,
प्राणों, से निश्वास-समीर।
यह पगली बेसुध उर-पीर॥

———

अभागा पथिक

—१—

हाय, बिनदेखा विकट पथ,
और यह बढ़ता अँधेरा;
रक्त-सिञ्चित क्षितिज-दृग में।
दीर्घ-श्वासों का बसेरा;

वह प्रतीची के अधर पर
क्रन्दनारत मुस्कराहट;

क्लान्त सन्ध्या की उदासी
में विगत स्मृति का सवेरा;

मृदुल खगकुल कलित रव की
स्वर्ण-वीणा टूटने की;

राग-स्मित क्षिति के हृदय में
सुप्त अनुसन्धान मेरा।
हाय, बिन देखा विकट पथ
और यह बढ़ता अँधेरा ॥

—२—

री अपरिचित हास्यवदना
अप्रबुद्ध-पुमान्-कुड्मल !
करुण-कोमल स्निग्ध आभा,
मुक्त-कुन्तल, नयन ढलमल;

क्लान्त विद्युत-रेख-सम स्मित
अधर सीमा-प्रान्त पर ले,

आज पथ के मोड़ पर तुम
कौन हो, हे सौम्य "निर्मल" ?

देख कर तव मत्त छाया
भ्रांति में मधु-मास के पिकि—

राग-परिभव "पीउ-पीऊ"—
कूक उट्ठी विकल विह्वल !
री अपरिचित हास्यवदना
अप्रबुद्ध-पुमान्-कुड्मल !!

स्वच्छ, नीरव लोचनों से
पूछती हो मुस्करा कर:
"ओ पथिक क्या खोजते हो
क्यों भटकते हो निरन्तर ?"

हाय, मैं कैसे बताऊँ—
अब समय बाकी कहां है ?

है अभी पथ दूर मेरा—
और मैं परितप्त जरजर;

सांझ-शेष सुवर्ण-रेखा-
भी क्षितिज पर मिट चली है।

हे करुण सारङ्ग-नयना !
यों खड़ी क्यों मूक निःस्वर
स्वच्छ नीरव लोचनों से
पूछती हो मुस्करा कर ?

—४—

किस तरह मैं कह सकूंगा
इस विकट पथ की कहानी;
कँापती है वेदना-सम
राग–छल–छल–मूक वाणी,

कह नहीं सकता––मगर फिर
बिन कहे भी कल कहां है !

उमड़ आया है तभी तो
लोचनों में क्षार-पानी;

भार से असमर्थता के
कँापता है जो विनय-सम ।

हाय, मत पूछो, समय भी
अब कहां है और, रानी !
किस तरह फिर कह सकूंगा
इस विकट पथ की कहानी ?

—५—

जाओ अब तुम हे अचीन्हा !
मुझ अभागे को विदा दो !
दूर जाना है मुझे, बस
और ज्यादह अब न रोको !

चिर विषादच्छन्न निशि से
अब बसालूंगा विधुर-उर;

शांति से, सुख से बसो तुम
लो, चला मैं ! तुम भी जाओ !

नित्य-परिचित-ध्रुव-नखत-सम,
दृग-युगल मन में लिए मैं—

सींच लूंगा पन्थ-तट के–
धूल-धूसर पुष्प रो रो।
जाओ अब तुम, हे अचीन्हा !
मुझ अभागे को विदा दो !!

—अनुसन्धान

शिशिर घिरे जीवन-अरण्य में,
रोता है मधुमास उदास ।
जगह जगह पर तड़प रहे हैं,
उजड़े दिवसों के निःश्वास ।

नयन-सलिल से वाष्प उभर कर,
आच्छादित है नग्न विपिन पर,
तरु रोते हैं निःस्वर झर झर,
बिखरी है प्राणों की प्यास ।।

गायन मुखरित बङ्किम बन-पथ
जिस पर चरण-चिह्न कुछ थे;
अब उस पर सूखे पत्तों के,
सिक्त ढेर हैं पड़े हुए ।

द्रुम-दल हैं शोकातुर, निःस्वर;
मृत पल्लव-बालों के ऊपर—
अश्रु वृष्टि करते हैं झर झर;
रिक्त हृदय में शून्य भरे ॥

खग सब छोड़ गए नीड़ों को,
कर बन कूजन-हीन, उदास ।
रह रह कर बातास छोड़ती,
रुद्ध-क्रन्दना-रत निःश्वास ।

भू पर पड़ा कुहासा निर्मम;
छाया नभ पर सघन विषम तम;
अखिल विश्व नीरव क्षत-उर-सम;
झिल्ली-रव करता उपहास ॥

विश्व-हीन इस अन्ध विजन में,
जाने किस का अनुसन्धान
मम प्राणों से निकल निकल कर,
रोता फिरता है नादान ?

वृक्ष वृक्ष के नीचे जाकर,
निर्झर झरण-दृग-घन बरसाकर
विजन-स्तब्धता को तड़पाकर,
खोता है निज उतले प्राण !
विश्व-हीन इस अन्ध विजन में-
जाने किसका अनुसन्धान ?

ओ मेरी क्रन्दित निःश्वास !

रच दी थी लुण्ठित आशा ने

प्राणों में घन कज्जल पावस,

सखि, यह कौन निठुर विद्युत-सम ?

करता विवरित तम-उर हँस हँस ?

आँक गया आलोक-स्पर्श से

एक चित्र का मृदु-आभास ?

ओ मेरी क्रन्दित निःश्वास !!

ओ उर-उपवन के ऋतु-राज !

शिथिल निदाघ-दिवस-श्वासों सम

मेरी प्यासों का सूनापन;—

मेरी साधों में खोया सा

पावस निशि का बेकल रोदन;

विगलित तारक सम पलकों पर

सहसा नाच उठे क्यों आज ?

ओ उर-उपवन के ऋतु-राज !!

यह किस का नीरव आह्वान ?

विविध-वर्ण-अम्बद-आविष्टित

सान्ध्य-शून्य की नीरव वाणी,

बिखर गिरी धूसर-प्रान्तर पर

बन कर मम नयनों का पानी;

इसमें छलक गया अनजाने—

जाने किसका अनुसन्धान !

यह किसका नीरव आह्वान ??

❀ ❀ ❀

प्राणों में कुछ होता-सा है ।
चुपके चुपके रो रो कर कुछ
निज को निशि-सम खोता-सा है ॥

पहरों निश्चल सो सो कर कुछ,
आंखों के पीछे छाया-सी
बढ़ कर, धुँधली हो हो कर कुछ—

उर-सर पर कलुषित-काया सी,
छा जाती है अन्धकार-सम
हृदय-हीन विधि की माया-सी।

... .

रहने दो हे विरह-विधुर-तम!
यह गाढ़ी छाया उर-सर पर।
इसके नीचे छिपी हुई मम—

जीवन की मलिनाई, रोकर,
हे पीड़ा! मत नग्न करो तुम
ढँका हुआ रहने दो उर-सर।

———

रूपसि ! किसका अनुसन्धान ?

अधरों पर स्मित-अरुण-स्तवक ले,

शुक्तिज से भर लोचन-सीप;

किस आशा में जला रही हो

निर्जन पथ पर प्राण-प्रदीप ?

किस निष्ठुर अपरिचित पथिक की

सुन ली मृदु मुरली की तान ?

रूपसि ! किसका अनुसन्धान ??

लेकर चञ्चल-यौवन-दीप !

सखि ! जाती हो कहां खोजने

अन्तिम पूजा की शुचि रात,

अश्रुपूर्ण चिर-नम्र प्रेम में

धोकर अर्घ्य-कुसुम-सा गात ?

क्या भटकोगी "उसे" खोजते--

देश, देश, सखि ! द्वीप द्वीप ??

लेकर चञ्चल-यौवन-दीप !!

वसन हुए सखि ! धूसर म्लान !

तव कवरी के शारद पङ्कज

ढलक ढलक सब हुए निढाल;

उछल उछल कर सूख गई, अलि !

कुच-चूड़ा पर केशर-माल;

तव हाथों का बिखर गिरा है

कुवलय-कमल सौम्य अम्लान ॥

रूपसि ! किसका अनुसन्धान ??

———

—नीरव बेला—

कहते हैं नीरव बेला में सब की आंख बचाकर
विमल सुशीतल, रजत तुहिन कण आते हैं भूतल पर ॥

... ...

घोर-सुप्त-रव की निद्रा में
जागे नीरवता के प्राण।
निसस-निशीथ-निमग्न हृदय ने
छोड़ा मुस्कानों का त्राण।

नभ-छाया-नीलाञ्जन-रत-दृग
निरख मूक निशि हृत्कम्पन,
गृहगत-क्रन्दित-प्राण-प्रणय-सम
बने विश्वविहीन निर्जन।

घोर-स्तब्ध उर-नभ में भटकी
निराश्वास, उदास, बातास।
श्रान्त, क्लान्त, निर्जीव भुवन पर
उलझे निद्रित दीर्घश्वास !

कुञ्चित कुन्तल जीवन-अवनी
अन्त-हीन नृत-गीत घिरी
संभ्रम नीरवता में डूबी—
रंगमञ्च से लौट फिरी।

अविश्रांत-जागरण में डूबा—
अचल-अलस चिर-स्वप्नावेश—
निज निःस्वरता में ही सोया
भटक भटक कर देश विदेश।

नीरवता-नीरवता ही है
चहों ओर उर-जगती पर,
हे निशीथ ! हे चिर-निशीथ-तम
करो तुहिन-वर्षा झर झर !

कहते हैं नीरव बेला में सब की आंख बचाकर,
विमल, सुशीतल, रजत तुहिन कण आते हैं भूतल पर ॥

सहसा आज——

मेरे उर-प्रान्तर में सस्मित जाग उठे ऋतुराज।

करुणा-किरण-विकच नयनों में;
वाक्यपूर्ण निश्चल अधरों में;
सोता-सा देखा है मैं ने अपने जीवन का सपना।
चपल दुरन्त पवन में झलमल,
मृदुल शिरीष सुमन-सम कुन्तल,
विश्वविहीन विजन मम उर में फैलाए है सौरभ अपना॥

बङ्किम ग्रीवा मृदुल वृन्त पर
अरुण कमल-सम मञ्जुल,सुन्दर
लज्जामुकुलित वह मुखड़ा अब तैर रहा है नयनों में।
स्वच्छ 'निर्मला' मृदु ऊषा सम–
वह प्रशान्त स्मित, अलसित, निरुपम,
जगा रही है झञ्झा के उत्ताल झकोले प्राणों में॥

उर ने अपनी अभिलाषा का;
चिर-अभिनव, क्रन्दित आशा का;
देखा है प्रतिबिम्ब विहँसते उनकी उचटी चितवन में।
मरण-स्निग्ध-विस्मृति की इच्छा
जाग उठी बन उत्कट पीड़ा;
एक कसक सी नाच उठी अनुराग विकम्पित जीवन में॥

सहसा आज—

मेरे उर-प्रान्तर में सस्मित जाग उठे ऋतुराज ॥

———

आगमन

सघन घोर निःश्वासों सी थी

भोर हीन जीवन रजनी।

मुक्त कुन्तला विकल-निशा में

सोए थे दुख सुख सजनी !

बेसुध था मेरा संसार।

नीरवता के आंगन में—

सोया था मम हाहाकार।

परदेसी की सन्ध्या जैसे

तम के नीचे सोई थी—

मम आकुलता, व्याकुलता, जो

मादकता में खोई थी।

विजन वीचि का पारावार

सिकता में जो खोया हो—

ऐसा था मेरा संसार।

ऊषा-सम तुम मम जीवन में,

नयनों में आलोकभरे;

गोधूली-सम अखिल जगत का

मुद्रा में दुख शोक भरे;

चुपके चुपके प्राणाधार!

दूर क्षितिज पर तुम आईं;

मुस्कानों का भर शृंगार।

तेरी दृष्टि-स्पर्श से जागा

मानस-जग झंकारों-सा।

जीवन निशि में सोया क्षण क्षण,

काम्पा छूई तारों-सा।

छेड़ गई तव ज्योतिअपार

दुख सुख को, व्याकुला को,

मन में है अब करुण पुकार।

जाग उठा है हाहाकार॥

———

ओ नवजीवन, रे बेपीर !

अरुण रश्मियां, मधुर समीरण,
भर आए लेकर नव-जीवन;
टूट गया शायद चिर-रक्षित मेरा हृदय अधीर !

बिन छिद्रा इस तिमिर सदन में
(शून्यालय में, रुद्ध भवन में)
कैसे जा पाता प्रकाश औ' कैसे मधुर समीर !
ओ नवजीवन, रे बेपीर !!
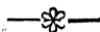
सखि ! तेरा यह रूप अपरिमित
आज अनन्त व्यथा बन बैठा।
तव अपार, निस्सीम प्रेम का
पीड़ा भी है, सुमुखि, रूप क्या ?

तव केशों की कज्जल छाया
आंक गई मनमें कुहु-क्षणदा;
तव नयनों की अचल चपलता—
फूंक गई उर में आकुलता ॥

सूखी कलिका की सिसकी-सी
रोती फिरती है जीवन में;
'पीऊ पीऊ' के क्रन्दित-स्वर,
झंक्रित-से हैं मन-कानन में;

प्यासी आंखों में घन-पावस;
मूक हृदय में अंध-अमावस;
मन में मृत्यु ललायित-आलस,
पीड़ा-कुसुमित जग-उपवन में ॥

प्राणों की अभिसार निशा में
निहित प्रभात विहँसते-से हैं;
जाने क्यों सांसों के अञ्चल
उर-स्पन्दन में फँसते-से हैं!

जगती का उर निस्पन्दित है;
आशाओं का जग झंक्रित है;
पागल सुख नीरव क्रन्दित है;
पीड़ा के युग हँसते-से हैं ॥

?

मेघ भरे नभ की छाया में ढलक पड़ा क्यों लोचन-लोर–
लिए हुए किस महानिशा की सन्ध्या सञ्चित निद्रित भोर ?
हास्य-रुदन के पार हृदय का तिमिर तीर,
अञ्चल में भर कर वन-समीर;
सुरभित, अधीर।
प्रिया-नयनों-सम गहन, गभीर
हास्य-रुदन के पार हृदय का तिमिर तीर,
करता है क्यों नम्राह्वान दिखाकर निज शुचि प्रणय-अकोर ?
मेघ भरे नभ की छाया में ढलक पड़ा क्यों लोचन–लोर ??

!

सजल, स्निग्ध घन-कज्जल बासर;

दयिता-चिक्कन चिकुर-समान,

भावच्छल-छल निर्मिलित दृग में,

गिरते हैं उड़ उड़ नादान।

फिर क्यों कर दृग-लोर न आए?—

लोचन-सलिल न क्यों बह जाए?

चुभन न क्यों दृग को तड़पाए?

उमड़ न आए क्यों तूफ़ान??

—❀—

—शायद वह जाने को हैं !—

शायद वह आने को हैं !

चिर परिचित जीवन-पतझर;

आंखों के अविरल निर्झर;

कुछ घड़ियों को प्राणों से सम्भवतः जाने को हैं।

पिकि के उजड़े क्रन्दन में
ऋतु-राज विहँसता-सा है ;
मेरा उर-कोरक कोई
फिर आज मसलता-सा है ।

कुहु रजनी के प्राणों में
जागा है कुछ सपना-सा ;
सारा दुखदर्द जगत का
लगता है कुछ अपना-सा ।

ऊषा की सपनिल घड़ियां
कुछ जागी-सी फिरती हैं;
आंखों से शुक्तिज लड़ियां
कुछ टूटी-सी किरती हैं ।

प्यासी आंखों की संसृति
फिरती है भरमाई-सी ;
मेरी अभिलाषाओं ने—
ली है फिर अँगड़ाई-सी ।

संभ्रम अवनी के उर में
कुछ धड़कन-सी हँसती है;
उनकी पद-चाप कहीं पर
द्रुत नर्तन स्वर रचती है।

कुमरी की 'कू-कू'-सम कुछ
कोमल है आज समीरण;
कर आया है यह "उन" की
अलकावलियों का चुम्बन।

कुछ सुरधनु-सा अङ्कित है
नभ के नीले सपनों में;
देखा है इसने "उन" की
शत-तड़ित-जड़ित–नयनों में ॥

शायद वह आने को हैं!
चिर परिचित जीवन-पतझर;
आंखों के अविरल निर्झर;
कुछ घड़ियों को प्राणों से सम्भवतः जाने को हैं ॥

———

—आज फिर

—१—

शोक-छायाच्छन्न गृह का
अर्द्ध-मूर्छित-सा उजाला
आज फिर मुस्का उठा था
देखकर वह रूप-ज्वाला;

शून्य, अप्रभ मध्य दिन के
निस्व-लुण्ठित से हृदय में

मत्त ऊषा के स्वरों की
ढल गई थी रक्त हाला;

काल-सीमा-पटल पर कुछ
आँक गईं निस्सीम घड़ियां

भर गई उजड़े दिवस में
मुग्ध, मञ्जुल, सौम्य आभा
आज फिर कुछ क्षण हँसी थी
अश्रु-सिक्त, अचेत प्रतिभा ॥

—२—

अन्ध निशि के स्वप्न-सम वह
स्निग्ध, कुञ्चित, मुक्त, कुन्तल;
अलक-आकुल, स्मित-विकच मुख;
कुन्द—उज्ज्वल हास्य निर्मल;

शिथिल श्यामल केशराशी-
पवन चंचल घन-घटा सी

क्षीण कटि पर झूमती थी
सुख विभावरि-सम सुकोमल;

दृष्टिपथ की नीलिमा में
कल्पना अलसा रही था;

होम-पावक की शिखा-सम
एक सुरभित-सा उजाला—
उन विशाल, उदार नयनों-
में निरन्तर हिल रहा था ॥

—३—

वह मधुर-शंकित-मिलन-स्मित;
लाज–अवनत चपल लोचन;
वामकर-उपहित ललित मुख
वेणु-स्वर–सम अलक–कम्पन;

भाव परिवृत वह शिथिलता
स्निग्ध, मौन, सकरुण शोभा;

वह मिलन उद्दाम पीड़ा,
राग–कातर प्रमद क्रन्दन–

हाय, उस मधु मिलन क्षण में
मैं अभागा निमिष भर भी

खल भविष्य न भूल पाया
औ' न भूला विगत जीवन।
हाय, सुखमय हो न पाया
एक क्षण भी मम विधुर मन॥

दूर रहो !—

दूर रहो, तुम दूर रहो, हे प्रियतम, दूर रहो !
बक-पान्ती से कज्जल-घन-सम;
वेणुरुदन-से वञ्जुल-वन-सम;
निठुर हृदय से दृग-जल-कण-सम, प्रियतम दूर रहो !

मेरा क्या है मैं जीवन भर
रो रो कर भी जी लूँगा।
निर्झर झरित प्यासी आंखों की
प्रखर पिपासा पी लूँगा।

सूनी रातों से भर लूगा
उजड़े दिवसों का अवसान।
ऊषा के सपनिल अञ्चल से
ढक लूँगा क्रन्दित अरमान।

आशाओं की दग्ध चिता पर,
रख दूगा प्राणों की हार।
रुद्ध-रुदन की मूक-कसक से
भर लूगा जीवन-शृँगार।

छोड़ आऊँगा हृत्कम्पन को
अभिलाषाओं के उस पार।
कर डालूँगा अश्रु-विलोपित
तृषित हृदय की हाहाकार।

———

—२—

जब तुम निविड़ निकट होती हो
मैं हो जाता हूँ मद-होश।
लुट जाती है मेरी संज्ञा;
खो जाता है मम सन्तोष।

मेरी कलुषित छाया से तुम
विकृत-सी हो जाती हो।
केवल मेरे ही "ममत्व" में
रूपसि! तुम खो जाती हो!

मम अरमानों का स्वप्नाञ्चल
सखे! तुम को ढक लेता है
मेरी आंखों से "तेरापन"
प्रिय, ओझल कर देता है।

... .

जब तुम मेरी मनुहारों पर
झुँझला कर मुस्काती हो,
आल्हलायित अलकों में से
नयन-वाण बरसाती हो ;

तेरी निशि-अंकित नयनों में
मेरे सपनों का आवेश,
भर देता है रक्त-राग से
स्वर्ण-उषा का चिर-सन्देश ।

तब तुम एक अपूर्व अश्रुकण
लोयन-कोयन में भरकर
मेरे वक्षस्थल में निज मुख
कर गोपन रहतीं निःस्वर ।

लेकिन तेरी मुस्कानों में;
तेरे उस दृग-जल-कण में;
"मैं" ही तो होता हूँ, प्रेयसि !
तुम होती हो निज मन में ।

... ...

तुम तो केवल मम सपनों का
एक चित्र हो जाती हो।
मेरे मन की प्रतिछाया बन
मुझमें ही खो जाती हो।

केवल "मैं" ही रह जाता हूँ
या मेरे मन की तस्वीर।
आह! न जाने तुम कब ओझल
हो जाती हो, री बेपीर!

अपनी छाया से मैं तुम को
कर देता हूँ आभा-हीन।
तुम में से "तुम" को खोकर, हो
जाता हूँ निज में तल्लीन॥

दूर रहो, तुम दूर रहो, हे प्रियतम दूर रहो
बक-पान्ती से कज्जल-घन-सम;
वेणु-रुदन से वञ्जुल-वन-सम;
निठुर हृदय से दृग-जल-कण-सम, प्रियतम दूर रहो!!

क्यों ?

हृदय शून्य में आशा तारक जल जल कर खुद बुझ जाते।
अनिर्वाण उर-अनलखण्ड निर्वाण भस्म होकर पाते।
प्रशान्त निर्मला मृदु ऊषा बन,
क्यों आईं तुम, हे जीवन धन ?
रच उलकाकुल में निस्पन्दन,
दे डाला मृत्यु से जीवन।
कुछ दिन और न क्यों रहने दी भोरहीन जीवन-रजनी ?
क्यों उजाड़ दी प्राण-निशा, हे अचल-उषा-हसिता सजनी ?

ग्रह-शशिहीना, विश्वविहीना चिर-निशि के पावन तम में,
गहन, गभीर, प्रसर तव स्मृति मिल जाती मम अन्तरतम में ।।

अचल-नृत्य गायन-रत यौवन
अगणित-तड़ित-जड़ित तव लोचन;
स्वच्छ, स्निग्ध, कज्जलमय तम में—
भरते अश्रु सिक्त मूनापन ।

कुछ दिन और न क्यों रहने दी भोरहीन जीवन-रजनी ?
क्यों उजाड़ दी प्राण-निशा, हे अचल-उषा-हसिता सजनी ??

———

रहने दो !

मेरी आशाओं में सोया
अभिलाषाओं का उपहास;
मेरे छल छल नयन-युगल में
डूबी मिलन सुधा की प्यास

दुख ही सुख है मम जीवन को;
दुख में ही रहने दो मन को;
मत छीनो निर्धन के धन को !

सीमाहीन शून्य में सीमित—
रहने दो मेरे उच्छ्वास ।
मेरी आशाओं में सोया
अभिलाषाओं का उपहास ॥

———

कैसे करूं बिदा ?

अझोर झरित नयनों की प्यास;

पलायित सपनों के निःश्वास;

कैसे करूं इन्हें प्राणों से प्रियतम आज विदा ?

सन्ध्या-धूसर सजल मेघ-सम
यह प्राणों पर रहते हरदम,
तुम तो आती हो चपला सम, प्रियतम यदा कदा!

तुम बिन दुख के चिर-दुर्दिन में,
स्तिमित-दीप-सम अन्ध-विजन में,
यह चिर सहचर हो जीवन में, प्रियतम रहे सदा!
फिर कैसे करूँ बिदा ?

जब सम्मुख होते हैं प्रियतम,

मिलन-मधुर उद्दाम-वेदना

कर देती है भ्रष्ट चेतना;

भर जाता है उत्कट पीड़ा से मेरा अन्तरतम

हो जाती हूँ संभ्रम-नीरव;

कारणहीन-अश्रु टपकाकर,

कहती हूं मन को समझाकर,

"कब आए वह ? कहां यहां वह ?—सूना है जीवन-भव।"

जब वह पास नहीं, सखि, होते !

मेरा भुवन उजड़ जाता है;

दृग-घन उमड़ उमड़ आता है;

निशि-सम मेरे मूक प्राण तब चुपके चुपके रोते।

दृश्य-सृष्टि कर अश्रु विलोपित;

करती हूँ सखि ! आंख मूँद कर

उन की रचना अन्तरपट पर,

कर लेती हूँ केवल "उन" से सूना-जीवन पूरित ॥

———

टूट गए वीणा के तार।

आज सभी कुछ उजड़ा उजड़ा सूना सब संसार ।।

हृदय-द्वार पर कोई आकर क्षण भर में ही पलट गया;

चिर-अभिलाषा, चिर-आशा का आंख झपकते अन्त हुआ।

आज हृदय में कोई गाकर चुप हो बैठा निर्मोही,

आंक गया कम्पित प्राणों में चिर-नीरवता फिर कोई ।

आंखों के उजड़े मेघों पर क्षण भर सुरधनु अंकित कर,
छोड़ गया चिर-निःश्वासातुर, नित-लुण्ठित जीवन-अम्बर।

उर-सरसी में पल भर आकर पलट गया वह मत्त मराल,
चिर-स्थिर जलपर आंक गया अब चिर-अस्थिरता के दुख जाल।

आज व्यथा-अनुनादित-सागर भर आया क्रन्दित मन में;
बिखर गई निस्सीम गगन की अतल शून्यता जीवन में।

अखिल विश्व में एक वही था, हाय वही अब रूठा है—
"सत्यम्-शिवम्" सभी कुछ मिथ्या, जगमें सब कुछ झूठा है॥

टूट गए वीणा के तार।
आज सभी कुछ उजड़ा उजड़ा सूना सब संसार॥

—:❀:—

सान्ध्य-गगन-सम क्लान्त, विजन दृग
पड़े अचेत उदास।
तुम्हें खोजते भटक रहे हैं—
क्रन्दित दीर्घ:-श्वास।

दग्ध-श्वास-उपरक्त-अधर पर
आशाहत आवाहन रो कर,
निहित किए हैं अश्रुकणों को
ओढ़े नीरस हास।

प्राचीरों से टकरा टकरा--

शून्य हृदय की हूक,

पलट हृदय में ही आती है,

बन कर नीरव कूक।

छा जाती है तब प्राणों पर

सघन घटा-सी घुमड़ घुमड़ कर,

उस में "वह छवि" बन आती है

विद्युत का आभास।

हृदय-कुञ्ज में भस्म रमाए

वैरागी अनुराग

शब्द-हीन भावाकुल-स्वर में—

गाता विहाग राग।

चित्र-अंकिनी-आशा का कर

निस्व–रंकिनी–अभिलाषा पर

अंकित कर नव चित्र निरन्तर

करता है उपहास॥

———

पल पल, क्षण क्षण

यह पिकि-कूजन–

याद दिलाती है वह चितवन;

मारुत-चंचल नीलनलिन-सम नृत्यविभोर विलोचन;–

अलसित, अलसित

वह मञ्जुल स्मित;

वह विशृंखल लोल अलक नृत;

स्मित प्रक्षालित अधरों पर वह प्रेम-शिथिल आवाह्न;

ढलमल ढलमल

चञ्चल, निर्मल,

अलि-गुञ्जन-सम दृष्टि सुकोमल;

अलस-अनङ्ग-तरङ्गमयी मधुऋतु-सम मुकुलित यौवन।

उड़ जा उड़ जा,

ओ पिकि उड़ जा!

निठुर हठीले जा, मत तड़पा!

उमड़ घुमड़ आया आंखों में आकुल, आतुर सावन॥

———

कलियों के हंसने में रोया-

चिर-परिचित मेरा रोदन।

कुहुक उठा पिकि-करुण कण्ठ में

मेरे उर का 'सूनापन'।

मेरे मन की मूक हूक फिर

कूक उठी मधुकर-स्वर में चिर!

धीर समीरण में कराहते-

फिरते मम निःश्वास सघन।

नव–अनिद्र-सपनों पर झूमी–

नीरव अश्रु-निपात निशा।

निर्झर झरित नयनों में जागी

आकुल अविरत प्रखर तृषा।

आशा-पथ की रूक्ष धूलि पर

रोती है अभिलाषा निःस्वर;

छीन लिया विच्छोह-व्यथा ने

हाय, प्रिया का मधुर मिलन॥

———

रे चातक !

वाष्पाकुल, विच्छोह विक्षता,

प्रखर पिपासा से बेचैन;

मैं भी विरह-विधुर हतभागा

करती हूँ 'पी-पी' दिन रैन ।

रे क्षत चातक ! हम दोनों ही
लिए हुए गोपन--अनुराग,
लोचन-सलिल--तीर पर बैठे
गाते हैं नित विहाग-राग

अन्तर केवल इतना है, तू
शब्दपूर्ण, मैं शब्द-विहीन ।
आ, अब दोनों स्थान बदल लें,
पर, मैं बन्दी—तू स्वाधीन ॥

आज अधर फिर बेसुध गाते।
रो रो कर फिर आज किसी को सूने नयन बुलाते॥

विकल प्रणय की दृग-जल-धारा–
छोड़ हृदय का भग्न किनारा,
आज डुबाती अग जग सारा।
लोचन प्यास बहाते।

विधुर-हृदय के दुख सन्देसे–
नग्नावाहन-चित्र बने-से,
निःश्वासों में रोय-हँसे-से,
प्राणों को तड़पाते।

जागे जागे, भटके भटके—
हत-साधों में अटके अटके,
उर-स्पन्दन के खा खा झटके,
मिलन-स्वप्न भरमाते।

उर-सरसी के विजन पुलिन-पर
छेड़े द्रुत-नर्तन-कोमल-स्वर,
घूम रहे हैं आज निरन्तर—
वह लोचन मधुमाते॥

आज अधर फिर बेसुध गाते।
रो रो कर फिर आज किसी को सूने नयन बुलाते॥

———

पथ प्रदर्शक—

घन पलकों की नीली छाया में ध्रुव तारक-सम कम्पित;

रे थकित, चकित-से श्रान्त पथिक !

अर्थहीन-भावाकुल भाषा किए मौन-रव में सञ्चित ;

रे अकथ काव्य के मौन रसिक !

नीहार-धौत-जीवन-नभ में—
चमको, चमको, प्रतिपल चमको !
उच्छ्‌वास-यवनिका की छाया में
मत ओझल हो, मत ओझल हो !

प्राणों की अभिसार-निशा घनतिमिराच्छन्न, विकल, चिन्तित।
मैं पन्थ-भ्रष्ट, दिग्‌भ्रान्त पथिक।
केवल तुम्हें देख पथ पाता है मम मन नैराश्यावृत।
रे ध्रुव-तारक, रे तिमिर-वधिक !
रे आंसू चमको अधिकाधिक !!

———

कब से झुक झुक झूम रहे आंखों पर बादल !
'पीऊ-पीऊ' कूक रही कब से उर-कोयल !

उमड़ घुमड़ आकुल पावस
प्राणों पर रोई।
तरल, तमिस्र, विजन रजनी।
दिवसों पर सोई।

विरह-सलिल के नीरव तट पर
चक्रवाक रोता सिर धुन कर।
अमर साधना हतभागा
हँसती हो पागल।

आंखों कि अविरल झड़ियों
में डूबा जीवन
फिर भी मेरे हृदय-प्रान्त
का सूखा कन कन;

आशा पथ पर 'हू हू' करती--
प्यासी धूल निरन्तर उड़ती;
तृषित प्रतीक्षा के अंकुर
मुरझाते पल पल ॥

कब से झुक झुक झूम रहे आंखों पर बादल !
"पीऊ पीऊ' कूक रही कब से उर-कोयल !!

कैसा दुख;?—क्या सुख अलबेला;?—
क्या आदर ?—कैसी अवहेला ?—
    क्या विस्मृति-क्षण ? क्या स्मृति बेला ?
    क्या निर्जनता ?—विहड़ झमेला ?—
        तुम बिन—केवल तुम बिन—जग में
सखि ! मैं विश्व विहीन अकेला ॥

हिमकण-धौत प्रभात गगन में;
खग-कुल-रव के मृदु गुञ्जन में;
अरमानों की अरुणाई-सी
मुस्क्याती है शरमाई-सी !
इस मुस्कानों की बेला में-
सखि ! मैं विश्व विहीन अकेला ॥

प्राचीरों की अस्थिर छाया
लेकर मोह-व्यथा की माया,
निज प्रियतम आतप से मिलकर
संज्ञाहीन पड़ी है निःस्वर।
पर इस मधुर मिलन के क्षण में
सखि ! मैं विश्वविहीन अकेला ॥

दूर कहीं से कोकिल का स्वर
प्राङ्गण में नृत करता आकर;
आम्रनिकुञ्ज-निसुप्त-सघनता
भर भर कर निज स्वर में लाता।
पर इस गायन मुखरित जग में-
सखि ! मैं विश्वविहीन अकेला ॥

प्राचीरों पर वन-पारावत–
घन-चञ्चू-चुम्बन-सुख में रत,
अनजाने ही जगती का उर
करते हैं सुख मदिरा से पुर ।
पर मैं इस सुख की संसृति में–
निर्जन, विश्वविहीन, अकेला ।।

द्रुमदल पर नव पल्लव सस्मित
गाते हैं कुछ अलसित-अलसित,
लेकर कल के सुख-सपनों की
सुरभित, मधुमय, मञ्जुल जगती ।
पर इस मधुमय मञ्जुल जग में
सखि ! मैं विश्वविहीन अकेला ।।

तुम बिन—केवल तुम बिन, जग में
सखि ! मैं विश्वविहीन अकेला ।।

———

माया का अद्भुत बन्धन।

—हुआ न क्षण भर को भी सुखमय मेरा दुखिया जीवन।

जब वह निठुर निकट होती है,

मम 'ममत्व' सब सुधि खोती है

रह जाते हैं भाग्यहीन प्यासे के प्यासे लोचन।

क्षणिक अगर होती है ओझल,
दुनिया हो जाती है बोझल;
हो जाता है सारहीन, निःस्पन्दित प्यासा जीवन।

निकट रहे तब देख न पाऊँ,
दूर जाय तब देखा चाहूँ;
इस मन को कैसे समझाऊँ ?—कैसे रोकूँ क्रन्दन ?

माया का अद्भुत बन्धन।
हुआ न क्षण भर को भी सुखमय मेरा दुखिया जीवन॥

लुप्त हुआ दिन का उजियाला !

सोजा, आशा– स्पन्दन सो जा '

विधुर-हृदय के क्रन्दन सो जा !

छलका दे सपनों की हाला !

निद्रापूर्ण निशीथकूल पर

फेनोच्छ्वल यौवन-मधु लेकर;

चुम्बन पूर्ण सरस विम्बाधर-

तव आवाहन से रञ्जित कर;

स्वप्न-सुसंवृत लज्जामुकुलित

बैठी है कोई मधुबाला !

लोह शलाखाओं के पीछे,

पाहन–प्राचीरों के नीचे,

इस निर्दयता की जगती में

शिकलों की झन झन के पीछे

मतवाली मुस्कान-स्पर्श से-

रच डालोगी आसवशाला।

अन्तहीन अन्तर दुखसागर,

विरहातुर अविरल दृग-निर्झर,

प्राणों का तरलित क्रन्दन-स्वर,

नयनों के सीमांत प्रान्त पर-

लेकर करुण कान्ति की आभा,

सब में छलका देगी हाला।

लुप्त हुआ दिन का उजियाला॥

—❀—
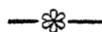
विफल प्रतीक्षा की ओ पीर !

चिर-अस्ताचल वासिनि सन्ध्या

आंक गई जग पर नीरवता ;

प्रिय सन्देश मिला न मुझे मैं कैसे रोकूं लोचन-नीर ?

याद दिलाती हैं यह घड़ियां—

विगत दिनों की अविरल झड़ियां;

जब आंखों में पावस-निशि थी, प्राणों में था शिशिर-समीर ।

अन्तस्तुहिन सुमन-सम जीवन
सिमटाए था लोचन-जल-कन,
रोती थीं-मधु-लोलुप साधें, निर्जन था स्मृति-सर का तीर।

तृषित निदाघ-दुपहरी के पल
रहते थे अधरों पर बेकल,
आशाओं में जाग्रत थी चिर-सिक्त अमा की निद्रित पीर!

विपिन शेष की पतझर-सांसें-
बसी हुई थीं अभिलाषा में;
अखिल व्योम का सूनापन था मानसमरु में विकल अधीर॥

विफल प्रतीक्षा की ओ पीर!
प्रिय-सन्देश मिला न मुझे मैं कैसे रोकूं लोचननीर!!

———

ओ सपनों की चतुर चितेरी !
तुम बिन यह जाग्रति की घड़ियां–
सूनी सूनी, निपट अँधेरी।

निशि-नयनों से अञ्जन लेकर
अन्तस्तारक-स्मित, हिम में भर,
निद्रा के मृदु रजत पटल पर
रचती अपने चित्र मनोहर;
इन चित्रों की रेखाओं ने–
मेरे जग की सीमा घेरी !
ओ सपनों की चतुर चितेरी !!

वैठ निशा-चर्चित आङ्गन में
अपने चित्र बना मम मन में;
री निठुरा! क्यों नींद उजड़ते
छिप जाती हो जाग्रत दिन में ?
दीर्घ विषाद सघन रजनी से
भर जाती हो आंखें मेरी
ओ सपनों की चतुर चितेरी !!

या जाग्रति में भी रह जाओ,
या फिर इस में नींद बसा दो;
चिर-निद्रा से ढक मम जीवन
हँस हँस नित सपनों में आओ।
रह जाए इस चिर-निद्रा में ।
या अविकल तम, या छवि तेरी।
ओ सपनों की चतुर चितेरी !!

———

भरा हुआ मन सूना सूना,

सूनी आँखें भरी भरी।

तरल साधना प्यासी प्यासी,

प्यासी पीड़ा हरी भरी।

विक्षत उर के घाव विहंस कर

सजते लोहित साज निरन्तर।

अमर प्रतीक्षा सहमी सहमी;

अभिलाषा कुछ डरी डरी॥

विधुर चेतना खोई खोई
'अपनापन' रोया रोया।
मानस-निर्गत-स्वप्न धूलि पर
हाय, पड़ा सोया सोया।

अधरों पर स्मित, आंखों में जल
लिए हुए आशाएँ निश्चल–
उजड़े पथ पर थकी थकी सी
रो रो कहतीं "मरी-मरी" ॥

———

सन्ध्या-रक्त-राग में अंकित
अश्रु-स्नात आह्वान
आओ भूले से आ जाओ !
मानिनि, छोड़ो मान !

द्रुत, उत्ताल, तुमुल छन्दों—सम
व्यस्त, व्यग्र पद रखती प्रियतम,
आजाओ, आजाओ, निर्मम,
भूलो हठ, अभिमान !

री अकरुण ! आ हृदयकुञ्ज में-
गाओ सकरुण गान !

अधरों की स्मित, आंखों का जल,

प्राणों की मनुहार,

तेरे पथ में भटक रहे हैं-

भर अनुपम श्रृंगार।

नव-अनुराग-स्निग्ध हृत्कम्पन-

खींच व्यथा पर स्मित-अवगुंठन,

भर निःश्वासों में मृदु गायन

रोती है नादान।

बुझ बुझ कर फिर जल जल जाते

अनिर्वाण अरमान।

विरह-सलिल के विजन पुलिन पर-

आकर री द्युतिमान!

श्याम तमाल दीर्घ छाया में-

फैला दो मुस्कान!

चिर-अनिद्र-यौवन-मधुमय-स्वर
निद्राहीन प्रणय में भर कर,
कर दो मेरे हृदय-पटल पर
सपनों का निर्माण।
—तुम बिन हास्य, रुदन सब सूना,
अखिल विश्व सुनसान ॥

आओ भूले से आजाओ—!
मानिनि ! छोड़ो मान !!

———

यह छलिया संसार।

प्रेम-जगत के हास्य-रुदन का छलनामय व्यापार॥

आंखों से कह: "मत जाने दो"

अधरों से पूछा: "प्रिय जाऊं" ?

"जाओ !" ही कह पाया मैं, पर

क्या कहना था, क्या बतलाऊं !

क्षणिक मिलन से पागल होकर
कहना कुछ था कह कुछ डाला।
बिखरा सा अब सुँधक रहा है—
'राख भरा जीवन का प्याला।'

मौन विनय—'मत जाओ'—कह कर
मूक हृदय में रोने को थी;
जाने क्यों अधरों पर आकर
"जाओ"! कह पागल सी हँस दी!

प्राणों की प्लुत नीरवता में
"मत जाओ'—मत जाओ!" ही था
जाने कैसे शब्दों में बँध
"मत जाओ"; "जाओ"! बन बैठा!

उलटी प्रेम जगत की माया
उलटी भाषा, उलटी वाणी।
प्रकटित होती है उर-ज्वाला
बन बन कर आंखों का पानी।

इस की भाषा में नीरवता
नीरवता भावाकुल, कोमल;
सुख में कुछ अव्यक्त व्यथा-सी
दुख में मधुमय मोद अचञ्चल ॥

———

अतल निशीथ; गहन नीरवता;

विजन, सघन अँधकार।

लोह शलाखाओं में कम्पित

उलझे तारक-हार।

मेरे प्राणों की सीमा पर

कांप रहा है दारुण, दुस्सर :

युग युग की पीड़ा से कलुषित

प्राचीरों का भार।

कुहुकमयी आंखों में रजनी
निद्राहीन उदास।
क्रूर कल्पना के अञ्चल में
सुख दुख का आवास।
कारा-वातायन अपनाए-
बन-पारावत नीड़ बसाए,
मृदुल परों से कोमल 'सर-सर'
करता है अनुदार।

मृदु 'सर-सर' की प्रतिध्वनी से
ओ निर्बुद्धि कपोत !
क्यों आंखों में जगा दिए हैं–
कालिन्दी के स्रोत ?
मेरा हृदय-नीड़ सूना कर
वह "मेरा पारावत" सुन्दर
उड़, जा बैठा शैल-शिखर पर
ठुकरा मेरा प्यार।

मेरे सूने हृदय-नीड़ में

सोने दे अभिसार;

बहने दे विस्मृति-सलिला में

सुख सपनों की हार;

स्रोत-कुसुम-सम बहती आशा,

व्यर्थ-व्यथा-सिञ्चित अभिलाषा,

सोने दे घन तिमिर गर्भ में

ओ कपोत सुकुमार॥

———

बेसुध मचली फिरती थी मन में पीड़ा दीवानी।
गा गा चुप हो जाते थे अनुदार अधर अभिमानी।
इन प्राणों की गम्भीर व्यथा
सोचा था 'उन' से कह लूंगा;
जब उनका विरह सहार लिया
फिर व्यथा-विरह भी सह लूंगा।
सोचा था मम नीरवता कह देगी दुःख कहानी
बह जाएगी उर-ज्वाला बन कर आंखों का पानी।

पर क्षणिक मिलन मधु सुख ने कर डाला मुझे दिवाना।
नीरवता भूली वाणी, दृग भूले व्यथा वहाना।
अधरों ने मृदु मुस्कानों से
ढकदी प्राणों की विषम व्यथा;
कुछ अर्थहीन सुख-बातों ने
ढक डाली मन की दुःख-कथा।
तब दुख को भूल गया था, अब सुख से हूँ बेगाना।
इस प्रीति-मधुर दुख में ही उर ने उनको पहचाना॥

निस्सीम गभीर व्यथा के

प्राणों में प्रिया-निकेतन।

घन अन्तर अश्रुसलिल में

शतदल-सम उनका आसन।

इस मेरे लघु जीवन में,

—जीवन के प्रति-स्पन्दन में—

हँस उठा अखिल जगती की

पीड़ा का दारुण क्रन्दन।

वे पीड़ा बन आती हैं
मैं हँस स्वागत करता हूँ।
निज हास्य-रुदन की दुनिया
प्रिय चरणों पर धरता हूं।
नव-प्रीति-सुमधुरा पीड़ा
करती प्राणों में क्रीड़ा
ले उड़ा शून्य घड़ियों को
गोपन-अनुरागन-प्रभञ्जन।

अब स्तब्ध व्यथा रखता हूँ
अविरत प्रलाप में गोपन।
नित ढक कर मुस्कानों से
रखता हूँ अविरल क्रन्दन।
इस दुख में सुख हँसता है;
सौन्दर्य जगत बसता है;
चिर-पूरित रहे इसी से
मम अरमानों का जीवन॥

—❀—

मेघ-रुद्ध, तिमिर-क्षुब्ध,

क्रुद्ध, भयक वात;

व्यथा-ग्रसित, त्रसित निशा;

उग्र वृष्टि-पात।

दीप-हीन अन्ध निलय;
विरह-विधुर मूक-हृदय;
निर्झर झरित तृषित नयन;

प्राण-अश्रु-स्नात

चन्द्र नखत तिमिर-लुप्त;
अखिल विश्व स्तब्ध, सुप्त;
अविश्रान्त रुदन विकल--

विजन, सजल रात।

अमल अतल चपल नयन;
मदिर, मधुर, मृदुल बयन;
प्रिया-स्मरण : कमल मतन-

फुल्ल तुहिन-स्नात ॥

—१—

विहगविहीन, निरभ्र विजन नभ;
सन्ध्या-रञ्जित श्रान्त समीर;
गोधूली-धूसर प्राङ्गण में –
लुण्ठित घन नीलाम्बर चीर।

क्लान्त प्रतीचि-अधर पर सस्मित
एकाकी मृदु तारक अङ्कित :

प्रथम प्रिया-चुम्बन-सम कम्पित
शंकित, लज्जित, ललित-अधीर।
चुम्बन ?–'वह' तारक-सम चुम्बन !......
हाय ! हृदय की दारुण पीर !!

—२—

तारक-पुलकित स्निग्ध यामिनी;
सद्य-स्तब्ध मृदु झिल्ली गान;
मृदुल शिरीष-सुमन-सौरभ से-
स्वच्छ तिमिर के आकुल प्राण;

सौरभ:—प्रिया-दृष्टि-सम कोमल
मञ्जुल, मुखरित, चञ्चल, निर्मल।...

दृष्टि ?—किसी की हाय ! दृष्टि का—
प्रेम स्निग्ध अञ्चल अम्लान,
जिस पर उस दिन हुआ हृदय का
चिर-वाञ्छित आदान प्रदान॥

—३—

मेरी वह मनुहार भरी स्मित,
'उन' का वह भ्रू कुञ्चित भाल;
सघन तिमिर-पुञ्जा कवरी के-
वह विशृङ्खल सुरभित जाल;

उलझ रहा था जिन में निशितम,
स्वप्न-सृजक : घन नीरवता-सम।

हाय ! वही नीरवता जिस ने—
रच डाला था विश्व विशाल।...
जिस की स्मृति निशि-नीरवता में
अब करती है प्राण निढाल॥

———

मधु-निशि-सम वह सपनिल पलकें,
श्रावण-घन-सम उलझी अलकें,
पिकि-"कू-हू"-मुखरित रसाल वन-सम तन्द्रालस-दृग;
इनको गीतों में उलझा कर
भर लूं आज न क्यों अन्तरतर;
भटक रहा है उर-प्रान्तर पर प्यासा जीवन-मृग।

शायद छन्दों का यह बन्धन
उलझा कर रख पाए वह क्षण:
वह क्षण—जब सन्ध्या में छिपकर आई थी मृदु भोर;
जब सीमित, असीम से मिलकर
हो बैठी थी अमर घड़ी भर,
जा पहुंची थी 'हास्य रुदन' की सीमा के उस ओर।

जब जगती के उर का स्पन्दन
तोड़ गया था मन के बन्धन,
मौन प्रकृति से जीवन जब पाया था गायन सीख।
नीरवता आदेश बनी थी,
स्तब्ध दृष्टि सन्देश बनी थी,
उन्मद हो जब मांगी थी प्राणों ने मृत्यु-भीख॥

पथ

—१—

पथ-विहीन मम जीवन-बन में
आ निकली थीं तुम उस दिन,
उर-सरसी के स्थिर-कम्पन से–
आकुल था जब अखिल विपिन।

कूजन-हीन, विजन कानन पर
झुका हुआ था स्थिर नीलाम्बर:
रोग-ग्रस्त बेसुध बालक पर
मां के आतुर नयन समान।

नीड़-शून्य तरु, विरस लताएँ-
फैला स्नेह-ललायित बाहें,
व्याकुल हो भरती थी आहें,
स्वप्न-विधुर उर-दहन समान।

दृग-निकुञ्ज निर्जनता में जब-
तैर रही थी विमल तुहिन;
पथ-विहीन मम जीवन-बन में
आ निकली थीं तुम उस दिन।।

❀ ❀ ❀

—२—

उर-सरसी के रजत पुलिन पर

ठिठक गईं थीं तुम पल भर,

निज वीणा के तार छेड़ कर

बना दिया था जग सम-स्वर।

मेरी दुनियां कर मतवाली,

फैला कर ऊषा की लाली,

पत्ता पत्ता, डाली डाली

जगा दिया उर-कानन में।

जूही पर मृदु अलिकुल गुंजन,

नव नीड़ों में खग-शिशु कूजन,

मधु मक्खियों की भन भन, घन घन,

सञ्चारित की थी वन में।

विपिन वीथि की क्षीण रेख-सी

पद-चिन्हों से अंकित कर।

चली गईं थीं जीवन-वन से

जाने तुम क्यों, कहां, किधर ?

—३—

पथ-विहीन वह ही जीवन बन
जहां वीथि का चिन्ह न था,
जहां प्रथम तव चरण-चिन्ह ने–
पन्थ-रेख दी थी फैला;

अब अनेक राही पथ पाकर
निस दिन जाते हैं आ आ कर,
क्षण भर अपना मन बहला कर,
क्षणिक मुझे कर मतवाला।

तुम ने ही वह पन्थ बनाया,
तुम ने ही मधु-मास बसाया,
तुम ने ही मन-विपिन जगाया,
तुम ने ही ढाली हाला।

अब जो नव-राही उस पथ पर
देता है पद-अंक बना,
तेरे ही वह पद-अंकों को
देता है नित-नूतनता॥

... ...

पाता हूँ प्रति चरण-चिन्ह में
तेरे चरणों का आभास।
चिन्ह-मात्र पर प्राण-अर्घ्य दे
पाता हूं जीवन आश्वास॥

—अनन्त यौवना—

नित परिवर्तनशील 'काल' की
नित्य-अनित नूतन बेला,
जूझ मरी तव चिर-यौवन से—
लख कर अपनी अवहेला।

काल-चक्र में जो भी आया,
क्षण में उसको धूल बनाया,
जाने यह क्योंकर रह पाया
सखि! तव यौवन अलबेला!

हे स्मित विकसित-वदना सजनी !

तव वह कुन्तल-आकुल मुख;

स्निग्ध, स्वच्छ, शुचि नयन-नीलिमा-

में वह शिशिर तड़ित-सा दुख;

मारुत--आकुल होम--हुताशन-

सम चञ्चल तव मुकुलित यौवन;

मालविका-वन पर अलि-गुंजन-

सम उस दृष्टि-स्पर्श का सुख;

वह तव बङ्किम-उन्नत-ग्रीवा;

अचपल दामिनि-सम मुस्कान;

ज्योत्स्ना-मत्ता-निशि-सम वह तव

मृदुल, सुखद हँसी अम्लान;

वह तव नूपुर रुणि झुणि गुञ्जन;

गायन-मुखरित वह अलसित क्षण;

पुष्प-रेणु-रत मदिर समीरण;

चिर-स्थिर हैं सब भाग्य समान।

तुहिन-धौत--जीवन-प्रभात में-
था तन्द्रालस-पूर्ण अरुण
प्राण निकुञ्ज न गुञ्जित था, जब
निद्रित थी पिकि कूक करुण;

उस नीरव बेला में सहसा,
हे मुकुलिका-बालिका-वयसा !
तुम आई थीं विच्युत-केशा,
विकसाती मधुमय फागन ।

—२—

अब भी इस उजड़े जीवन में

तव स्वरूप ऊषा-सिञ्चित:

सन्ध्या-किरण-विशाल-प्रान्त में

तन्द्रा-सुख-सम है अंकित।

हृदयासीना हो, हे प्रियतम!

तुम अगीत-संगीत-समान;

अलस-कल्पना-सम अनन्त हो

निद्रित कविता-मतन महान।

जिन अनाम तत्वों से सपनों

का होता है सखि, निर्माण

उसी तत्व से बनी हुई हो

तुम भी, हे विधि की मुस्कान!

सदा भावना मात्र रहीं तुम
मम जीवन का अलभ्य ध्येय;
स्वप्न सङ्गिनी रहीं सदा, पर
रहीं निबिड़ अज्ञेय, अजेय।

"देश-काल" का अणुमात्र "मैं"
"देश-काल" मम रूप विशाल।
पहुँच न पाया "मैं अणु" तुम तक,
"मैं विशाल" पहुँचे किस हाल ?

तुम हो अनन्त यौवना सजनी;
हो उपास्य मम जीवन की;
मैं युग युग से दीन उपासक,
तुम हो चिर-जीवन-देवी।

नित परिवर्तन-शील "काल" की
नित्य-अनित-नूतन बेला
जूझ मरी तव चिर-यौवन से
लख कर अपनी अवहेला॥

———

पुनर्जन्म—

शोणित शिकलों से अंकित यह
प्राचीरों का जठर जहान:—

ढाल रहा था मेरे मन में
निज प्राचीरों के पाषाण;
शिकलों की घन असित कुटिलता
से कलुषित करता था प्राण;

भरी हुई थी स्तब्ध रुदन की
निविड़ विजनता जीवन में;

तृषित दृगों में सुँधक रहे थे
वृष्टि-सिक्त-से कुछ शमशान;

चिर-निद्रा में डूब चुकी थी
रोती रोती अभिलाषा;

आशाओं की मृदुल लता पर
सूख गए थे सुरभित गान;
उजड़ चुकी थी साध-मञ्जरित
यौवन-रञ्जित मृदु मुस्कान।

—२—

निकल चला था जीवन में से
मानव-जाती का गौरव;
दया, प्रेम, उत्साह, न्याय, शम
हो बैठे थे सब नीरव;

रौद्र क्रान्ति की दग्ध भावना
मरणप्राय थी सिसक रही;

वक्षस्तल में तड़प रहे थे
शोणित-इच्छाओं के शव;
मधुर कल्पना, स्वर्ण भावना
सूख गई थी रो रो कर;

धूमिल तट पर थक बैठा था
सत्य मार्ग का अनुसन्धान;
मुरझा कर सब बिखर गिरे थे
अप्रबुद्ध, कोमल अरमान।

—३—

सहसा इस अन्धेरे जग में
होम-हुताशन-सम उज्ज्वल
जीवन-प्रेरित मृदु स्मित लेकर
आई वह सुन्दर निर्मल;

शरत प्रत्यूषा नयनों में थी,
पलकों पर मद-विभ्रम गीत;

स्वच्छ, प्रशान्त क्षमा परिवाहिणि—
वाणी में करुणा विह्वल;
श्याम तमाल-विपिन-घन छाया
च्युत कवरी में सिमटी थी;

मालविका—कलिका-सम उज्ज्वल
शुभ्रहँसी में था आह्वान;
दृष्टि-प्रान्त पर मचल रही थी
विगत जीवनों की पहिचान ।

—४—

शंकित मधुर मिलन के वह क्षण
बदल गए मेरा जीवन:
कोकिल की मृदु तानों से फिर
गूँज उठा मानस-उपवन;

'पीऊ-पीऊ' उर-पिकि बोला
वह मधुमाते लोचन देख;

प्राण-वेणु की निद्रित तारें
सहसा कर उठीं झन झन,
नित्य विनिद्र प्रेम के सपने
मूक व्यथा से विकच पड़े;

मृत प्राणों को मृदु पीड़ा ने
दे डाला जीवन वरदान।
अभिलाषाएं जाग उठीं फिर
आशा ने फिर छेड़ी तान।

—५—

भूक तृषा की इस जगती में
प्रिय मैंने तुमको पाया;
तड़प व्यथा की इस वेदी पर
तुमने मुझ को अपनाया।

अखिल पीड़ितों की दुख, पीड़ा
सखि! अब मैं अपनाऊंगा;

अब जीवन-परिशेष करूंगा
मानव-जाती की सेवा;
इस अपार प्रेम के बल पर
नष्ट करूंगा अत्याचार;

स्वर्ण-विकाश-उन्मुख क्रांति के
गाऊंगा नित-उज्ज्वल गान;
पिघला दूंगा निज तानों से
मानस-कारा के पाषाण॥